स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १९ } गौराब्द ४८७, मास—हृषीकेश ३, वार—गर्भोदशायी, शुक्रवार, ३२ श्रावण, सम्वत् २०३०, १७ अगस्त, १९७३ { संख्या ३

अगस्त १९७३

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

ब्रह्मादिदेवानां श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत ११।६।१५-१९)

(गताङ्क संख्या २, पृष्ठ २७ से आगे)

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ।
सोऽयं त्रिनाभिरखिलोपचये प्रवृत्तः कालो गभीर-रय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥१५॥

देवताओंने कहा—हे प्रभो ! श्रुतियाँ आपको प्रकृति, पुरुष एवं महत्तत्त्वका भी नियामक कहकर वर्णन करती हैं। अतएव आप ही इस जगत्की सृष्टि-स्थिति-संहारके कारणस्वरूप हैं । हे देव ! आप ही जगत्के संहार कार्यमें प्रवृत्त त्रिनाभियुक्त (चातुर्मास्यत्रय युक्त) संवत्सर रूपी महावेगशाली कालस्वरूप हैं। इसलिए आप ही पुरुषोत्तम हैं ॥१५॥

त्वत्तः पुमान् समधिगम्य यथास्य वीर्यं धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः ।
सोऽयं तयानुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥१६॥

हे देव! कारणोदकशायी अमोघवीर्य महाविष्णुने आपके निकटसे शक्ति प्राप्त कर जिस मायाके द्वारा इस जगतके बीजस्वरूप जिस महत्तत्वकी सृष्टिकी थी, उसी महत्तत्वने उसी माया द्वारा युक्त होकर अपनेसे बाहरी प्रदेशमें सात आवरणयुक्त सुवर्णमय अण्डकोषकी सृष्टि की है ॥१६॥

तत् तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ।
अर्थान् जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥१७॥

हे हृषीकेश ! आप जिस कारणसे माया द्वारा आविर्भाविता (प्रकटिता) इन्द्रियवृत्ति द्वारा उपनीत (प्राप्त) विषयसमूहका भोग कर भी उसमें आसक्त नहीं हैं, इसलिए आप ही स्थावर-जङ्गमके एकमात्र अधीश्वर हैं। परन्तु दूसरे-दूसरे जीव या योगी लोग अपने आप परित्याग किये गये विषयभोगसे भी सर्वदा डरते रहते हैं ॥१७॥

स्मायावलोक लवदर्शितभावहारि-भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोड़शसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥१८॥

हे देव ! रुक्मिणी आदि सोलह हजार महिषियाँ (रानियाँ) मृदु मन्दहास्य द्वारा विलासपूर्ण दृष्टिकटाक्षपातसे अपना हृदयगत भाव या अभिप्राय प्रकाश कर मनोहर भ्रूमंडल से सुरत-मन्त्र द्वारा निक्षेप किये गये सुनिपुण कन्दर्पबाण एवं कामकलासमूह द्वारा आपके चित्त को विक्षिप्त (चलायमान) करनेमें समर्थ नहीं हुई ॥१८॥

विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम् ।
आनुश्रवं श्रुतिभिरंघ्रिजमङ्गसंगैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ॥१९॥

हे देव ! आपकी कीर्तिसुधा प्रवाहिनी कथानदी एवं पादप्रक्षालन द्वारा उत्पन्न गंगा आदि नदीसमूह तीनों लोकोंके पापोंका विनाश करनेमें समर्था होती हैं। इसलिए विशुद्धि या पवित्रता कामी पुरुषलोग श्रवणेन्द्रिय द्वारा वेदवर्णित आपकी उत्तम कीर्ति-तीर्थ एवं अङ्ग संस्पर्श द्वारा आपके पादपद्मोंसे उत्पन्न तीर्थ (गंगादेवी) की सेवा किया करते हैं ॥१९॥

॥ इति ब्रह्मादिदेवानां श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥

वैष्णव ही एकमात्र जगद्गुरु हैं

वैष्णव ही जगतके एकमात्र गुरु हैं। तथाकथित निर्गुण ब्रह्मज्ञानी गुरु नहीं हो सकते। Personality of godhead (सविशेष भगवान्) के उपासक ही गुरु हो सकते हैं। पुरुषोत्तमके सेवकाभिमानी भी गुरु नहीं हो सकते, यदि वे अपनेको शिष्यका शिष्याभिमान न करें। वैष्णवाभिमानसे गुरु नहीं हुआ जा सकता। इसलिए हमारे श्रीगुरुपादपद्म कदापि अपनेको वैष्णव नहीं कहते थे। जो व्यक्ति अपनेको वैष्णव कहे, वह branded (चिह्नित या स्पष्ट निर्दिष्ट) अवैष्णव है।

हड्डी-माँसके थैलेके साथ कृष्णका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका शोधन कर कृष्ण-पादपद्ममें लगानेमें समर्थ होने पर सुविधा होगी। जागतिक विज्ञान आदि नरकके सेतु हैं। किन्तु इन सभीको भगवानकी सेवामें लगाने पर लोककल्याण होता है। श्रीलरूप गोस्वामीपादने श्रीश्रीमन्महाप्रभुजीके निकट सुना था—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।
निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

अर्थात् जो व्यक्ति काम, मन एवं वचनसे एवं सभी अवस्थाओंमें ही हरिसेवामें नियुक्त हैं, वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं। प्रत्येक कार्यमें, प्रत्येक पदविक्षेपमें, मनके द्वारा प्रत्येक चिन्ता में यदि कृष्ण वस्तुकी सेवा देखी जाय, तभी ठीक हुआ।

श्रीपृथु महाराजके सम्बन्धमें कहा गया है—

सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक्।
अन्यत्रब्राह्मण कुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः॥
(भा० ४।२१।१२)

अर्थात् श्रीपृथु महाराज सातों द्वीपोंके एकमात्र दण्डधर अधिपति थे। उनका आदेश सर्वत्र अलंघनीय था। एकमात्र ब्राह्मण कुल एवं अच्युत गोत्रके व्यक्ति अर्थात् वैष्णवों पर उनका शासन नहीं था।

गृहस्थ व्यक्तिको 'ब्राह्मण' एवं पारमार्थिक व्यक्तियों को 'वैष्णव' कहा जाता है। जम्बुद्वीप, आदिके श्रीपृथु महाराज अधिपति थे। केवल ब्रह्मज्ञ और वैष्णवोंके ऊपर वे दण्ड परिचालना नहीं करते थे। क्योंकि वे लोग उनके दण्ड-विधानके अतीत राज्यमें वास करनेवाले हैं।

जो व्यक्ति सब समय हरिसेवा करते हैं, वे 'अच्युत गोत्र' के हैं। जो व्यक्ति ब्राह्मण्य-धर्मसे च्युत हैं, उनके ऊपर ही दण्डविधान है। ब्राह्मण या वैष्णवके ऊपर कोई दण्ड नहीं है। जिस प्रकार साधारण नीतिमें सुना जाता है—King can do no wrong अर्थात् राजा कोई गलती नहीं कर सकता। ब्राह्मण ब्रह्मवस्तुका अनुसंधान करते हैं। जो देहधर्मी या मनोधर्मी नहीं हैं, वे ही ब्राह्मण हैं। जिनमें वैकुण्ठ ज्ञान की कमी है, वे ही अवैष्णव हैं। वे लोग आँख कान, नाक, जीभ, त्वचा आदिके द्वारा सब

कुछ माप लेना चाहते हैं। ब्रह्मज्ञ व्यक्ति ही वैष्णव हो सकते हैं। इसलिए वैष्णवोंके लिए सबसे पहले ब्राह्मण होनेकी एकान्त आवश्यकता है। बृहत् वस्तुकी धारणा न होने पर विष्णुकी सेवा नहीं होती। खण्ड संकीर्ण वस्तु कदापि ब्रह्म या विष्णु नहीं हो सकती या नहीं है। अनात्म विचार कृपणताका लक्षण है। ब्राह्मण होकर पूर्णता न प्राप्त करने पर वैष्णव हुआ नहीं जा सकता। कमसे कमसे आत्माके ब्राह्मण होनेकी आवश्यकता है। विष्णु भक्ति के बिना ब्राह्मणोंके लिए और कोई कर्त्तव्य नहीं है। दूसरे देवताओंकी पूजा करने पर ब्राह्मण छोटे हो जाते हैं। साधारण व्यक्तियों की धारणा है कि ब्राह्मण सभी देवताओंकी पूजा कर सकते हैं। किन्तु वेदोंका कहना है—ब्राह्मण एकमात्र विष्णुकी ही पूजा करते हैं। ब्राह्मणोंका आचमन-मन्त्र—"ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।"

रास्ता, घाट या जहाँ-तहाँ वैष्णव नहीं मिलते। एक विषयी व्यक्तिने कहा—दो सौ वैष्णवोंको निमन्त्रण करके आओ। साथ ही साथ दलके दल वैष्णव वेशधारी दो सौ व्यक्ति विषयीका निमन्त्रण खाने आ पहुँचे। वैष्णव होना इतना सीधा नहीं है। पृथिवी उजाड़ हो जायेगी, वैष्णव पाये नहीं जायेंगे। कम्बलके लोम (बाल) को बीननेकी तरह वैष्णव पाना कठिन है। इन सभी 'वैष्णव' नामधारी व्यक्तियोंको खिलाने पर विषयीकी भोगबुद्धि बढ़ जायेगी एवं ये सभी वैष्णव नामधारी व्यक्ति भी नरकमें चले जायेंगे।

श्रीमद्गीतामें कहा गया है—"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।" इसके कदर्थकारी व्यक्तियोंका कहना है—कृष्णको यदि बगीचेका माली कहकर पुकारा जाए, तो वे उस बगीचेके माली बनकर हमारे पास आयेंगे। मायासे मिलकर भगवान् आइए" आदि कथन कृष्णको अपने बगीचेका माली बनानेकी चेष्टा है। भगवान् जिस प्रकारसे है, वे जिसमें अपनी सुविधा समझते हैं, मेरे लिए उसमें दखल देना उचित नहीं है। मेरी चिन्ता द्वारा उन्हें बगीचेका माली बनाना या मेरी कल्पना एवं यथेच्छाचारिताके पोषाकमें उन्हें सजानेकी चेष्टा करने पर वे वैसा नहीं भी कर सकते हैं। जब मैं उन्हें अपने भोगके ईंधन रूपसे देखना चाहता हूँ, तब वे उनके कृष्ण-स्वरूपसे नहीं आते। मेरे पास उनकी मायाका रूप प्रकाश करते हैं। मैं जिस प्रकार कपटता कर प्रपन्न हुआ, वे भी उसीके अनुसार ही भजन करते हैं।

सम्बन्ध पाँच प्रकारका है— (१) पति-पत्नी, (२) पिता-पुत्र, (३) सखा-सखा, (४) प्रभु-भृत्य एवं (५) निरपेक्ष या शान्त।

सम्बन्धरहित व्यक्तियोंका कहना है कि शान्त भाव ही प्रधान है। वे लोग और चार प्रकारके भावोंमें बहुत अमंगल समझते हैं। क्योंकि जड़जगतके ज्ञानसे उनका मस्तिष्क परिपूर्ण है। जड़जगतके जितने आकर्षण हैं, उनसे मुक्त होनेके लिए वे शान्त रसका बहुत आदर करते हैं। किन्तु अप्राकृतका आकर्षण एवं जड़का आकर्षण एक नहीं है।

इस शरीरको 'मैं' कहने पर भी कुत्ते-सियार आदि इसे खा डालेंगे। सूक्ष्म भावको लेकर mental speculationist (मानसिक कल्पनाकारी) होने पर भी सुविधा न होगी। कृष्ण एवं कार्ष्णों (कृष्णभक्तों) का आश्रय ग्रहण करने पर ही सुविधा होगी।

प्रपत्ति पाँच प्रकारकी है। पाँच प्रकारके सम्बन्धमें प्रतिष्ठित होना ही प्रपत्ति-स्वीकार है। पाँच प्रकारके सम्बन्ध-युक्त न होकर यदि कृष्ण को हड्डी-मांसका थैला दिखाये,हाथ ऊँचा कर रखें या निर्विशेष भाव प्राप्त करनेकी चेष्टा करें, तो कृष्ण भी हमसे उसी प्रकार छलना करेंगे। ब्रह्मके साथ एकीभूत हो जाऊँगा, ऐसी दुर्बुद्धिसे परित्राण पानेकी चेष्टा ही यथार्थ मुक्ति है।

जो व्यक्ति अपनेको कर्त्ता समझें, उसका कदापि मङ्गल नहीं होता। 'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ 'मैं कर्त्ता हूँ' नहीं है। 'अहं ब्रह्मास्मि' का यथार्थ अर्थ है—'तृणादपि सुनीच' (तृणसे भी सुनीच),'तरु (पेड़)की तरह सहिष्णु' 'अमानी मानद', होकर सर्वदा हरिकीर्त्तनमें लगे रहना। जो वस्तु ब्रह्मके साथ समान धर्म युक्त है, उसमें जड़का या क्षुद्रका अभिमान नहीं रह सकता।

श्रीरूप एवं श्रीसनातन गोस्वामीपादने मूढ़ अनाचारी व्यक्तियोंके निकट भक्ति-सदाचार प्रचार किया था। अवैष्णव स्मार्त्त-समूह अनाचारी हैं। पश्चिमके व्यक्ति या तो कर्मी हैं, या ज्ञानी। श्रीचैतन्य महाप्रभुको 'कृष्ण' जानकर किस प्रकार भजन किया जाए, यह बात श्रील रूपपाद एवं श्रील सनातनपादने प्रचार किया।

'भक्तिस्तु भगवद्भक्तसंगेन परिजायते' के अनुसार आत्माकी वृत्तिको उन्मेषित करनेके लिए अकृत्रिम या यथार्थ भक्तका संग करना आवश्यक है। भक्तब्रुव या भक्तनामधारीका संग करने पर मंगल नहीं होगा। कृत्रिम भक्त, कृत्रिम भक्ति, कृत्रिम सात्विक विकार आदि द्वारा कदापि सुविधा नहीं होती। वेपथु (कम्पन) आदि भक्तिके लक्षण हैं, यदि अकृत्रिम कृष्णस्मृति हो। यदि दूसरी वस्तु या भगवदितर वस्तुकी स्मृति हो, तो वह कपटता एवं अभक्ति है एवं hysteric fit (रोगविशेषगत मूर्छा) अथवा emotion (चित्तक्षोभ या आवेग) मात्र है, कामके विकार मात्र है। कृष्णके पादपद्मको छोड़कर सभी कुछ ही असुविधाएँ हैं। धर्मकामना, अर्थकामना, कामकामना या मोक्षकामना—ये भक्ति नहीं हैं।

केवला या विशुद्ध कृष्णभक्तिके बिना परमहंस-धर्मकी पूर्णतया सिद्ध नहीं होती। यथार्थ या वास्तव वैदान्तिक होने पर वैष्णव हुआ जा सकता है। ब्रह्मके साथ अभेद होने के विचारसे युक्त व्यक्ति कदापि परमहंस-पदवी पर आरोहण नहीं कर सकते। कुटीचक, बहूदक एवं हंस—ये लोग परमहंस पदवीमें आरूढ़ नहीं हैं। पारमहंस्य-ज्ञानके अभाव होने पर अवैष्णवताका उदय होता है। मुक्तावस्था में नित्यसेवामें बाधा नहीं पहुँचती, कदापि सेवा बुद्धिकी कमी नहीं होती।

'मैं सेव्य हूँ, सभी मेरी सेवा करो'—ऐसा

विचार अवैष्णवोंका विचार है। ऐसे अवैष्णव कदापि 'गुरु' नहीं हो सकते। जो सभी गुरु शिष्यकी सेवा ग्रहण करते हैं, वे वास्तविक गुरु शब्द वाच्य नहीं। वे लोग शिष्य भी नहीं हो सके। भगवानके पार्षद लोग भोगियोंके अधर्म या धर्मके संसारसे मुक्त हैं। महाभागवत लोग अपनेको सबसे छोटा समझते हैं। "मैंने बहुत दिन तक शिष्य होकर दासताकी, अब शिष्यत्व अच्छा नहीं लगता; इसलिए अब गुरुगिरि (गुरुका कार्य) करनेकी आवश्यकता है"—यह बात वे लोग नहीं कहते। वे लोग गुरुका कार्य करने पर भी उनमें गुरुका अभिमान नहीं है। एकसौ प्रतिशत महाभागवतके लिए कार्य करना होगा। ६६.६...प्रतिशत मध्यम भागवतके लिए करना होगा एवं ३३.३... प्रतिशत कनिष्ठ भागवतके लिए करना होगा।

जिस व्यक्तिने एकसौमें से एकसौ प्रतिशत पारमहंस्य-धर्म प्राप्त किया है, उनके आँख, कान, नाक, मुख आदि सभीके द्वारा उनके सम्पूर्ण कार्योंको aural Reception (श्रवण) के द्वारा जान लेना होगा। उनका कीर्त्तन सुनना होगा। वे क्या करते हैं? केवल कीर्त्तन करते हैं। उनके लिए और कोई कार्य नहीं है। किन्तु यह बात आलतू-फालतू लोगों के कीर्त्तनकी बात नहीं है। ये सभी दुश्चरित्र लोग कीर्त्तनकारी नहीं हो सकते। इन लोगों के मुखसे हरिकीर्त्तनामृत नहीं निकलता। लोक-चित्ताकर्षक सुर-ताल-लय मान-भावभंगी के भीतरसे जो कुछ निकलते हैं, वे मायाके कुहक (अन्धकार या विष) हैं।

विष खाकर मर जाना बहुत उत्तम है, तथापि विषयी एवं योषित्संगीका संग करना अच्छा नहीं है। जो व्यक्ति हरिसेवक नहीं है, वे लोग ही योषित्-संगी हैं। अतएव श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटकमें कहा गया है—

निष्किंचनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
संदर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हंत हंत विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

हरिसेवाके लिए विषयीके मंगलके लिए उनके निकटसे माधुकरी ग्रहण विषयी-संग या योषित्-संग नहीं है। फल्गु-वैरागी मायावादी लोग जिस विषयी एवं योषितके प्रति घृणा कर हरिसेवाका परित्याग करते हैं, उसके द्वारा उनका प्रच्छन्न या गुप्त रूपसे योषित् एवं विषयीका संग ही हो पड़ता है।

यथार्थ अकृत्रिम साधुके अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। मेरे घरके निकटवर्त्ती दूकानमें झींगुरके मलसे भरा हुआ चाँवल एवं द्रव्यादि मिलते हैं। कौन परिश्रम कर और दूर जाय, अतएव वहींसे चाँवल आदि द्रव्य खरीदे जाय—ऐसे आलस्यके वशीभूत न होकर बाजारमें घुसकर अच्छे चाँवलको खोजना आवश्यक है।

हमारे चित्तमें यदि जड़ता, दुर्बलता, कपटता या अन्याभिलाष रहे, तो हमारे लिए वैसे ही गुरु मिलेंगे। चित्तमें मायावाद रहने मायावादी गुरुमिलेंगे। ऐश्वर्य भाव रहने पर श्रीसीताराम, श्रीवराह, श्रीनृसिंह आदिके उपासक हो जायेंगे। श्रीकृष्णके संकीर्त्तनकारी

श्रीगुरुपादपद्मका आश्रय ग्रहण करने पर ही वास्तव चरम मंगल होगा। श्रीकृष्णसंकीर्त्तन सबसे अधिक जययुक्त हों। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षकी कामनाके बन्धनमें आबद्ध रहनेपर हमारी गति का रोध हो जाएगा। हरिप्रेमका परिचय जिन्होंने पाया है, वे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षके हाथमें पड़नेको मध्य पथमें डकैतों के हाथमें पड़नेकी तरह समझते हैं। अकिंचना भक्ति ही सभी जीवोंकी नित्यवृत्ति है। जो व्यक्ति वर्णाश्रय-धर्ममें स्थित हैं, उनके लिए ये सभी बात कठिनतासे समझने योग्य हैं। इस लिए अनर्थयुक्त व्यक्तियोंको उच्छृङ्खल होनेके लिए नहीं कहा गया है।

हम लोग कई समय साधुको माप लेनेका प्रयास करते हैं। साधुको देख आये, उन्हें reject (नकार) कर आये, जैसे हम उनके examiner (परीक्षक) हैं। मैंने किसी यन्त्रसे साधुको देखा ? निष्किंचन पुरुषके निकट हरिकथा-श्रवण रूप संग-प्रभावसे भक्ति ही एकमात्र श्रेष्ठ वस्तु है, ऐसा ज्ञान होगा। भक्ति ही एकमात्र वस्तु होने पर निर्विशेषवाद और नहीं टिकता।

हम दूसरे कार्य करने जा रहे हैं और यदि रास्तेमें कोई हमें प्राणसे मार डालें, तो उस समय हमारी जो अवस्था होती है, वैसी ही अवस्था भक्ति करने जाकर धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी कपटताके द्वारा आच्छन्न होनेपर होती है।

वेदान्तका चरम प्रतिपाद्य विषय ही कृष्णप्रेम है। श्रीमद्भागवतने धर्म अर्थ, काम आदि या पांच प्रकारकी मुक्तिके कामनाकारी व्यक्तियोंकी निर्बुद्धिता एवं कपटताको निर्भीक एवं स्पष्ट वचनोंद्वारा खण्डन किया है।

श्रीमद्भागवतमें परम धर्मकी बात कही गई है। अक्षज वस्तुको 'ईश्वर' समझने पर यथार्थ रूपमें ईश्वरको अस्वीकार करना ही हुआ। "आराध्यो भगवान्" श्लोकमें पाँच प्रकारकी प्रपत्तियोंमें से नित्य व्रजकान्ताओंके आनुगत्यमें आत्माकी प्रपत्तिको ही या श्रीमती वृषभानुनन्दिनीके अनुगत्यको ही सर्वश्रेष्ठ एवं श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत कहा गया है। कीर्त्तन बहुत प्रकारसे होता है। Physical Demonstration (शारीरिक प्रदर्शन), Kindergarten system (खिलौने आदि द्वारा बच्चोंको पढ़ानेकी विधि) से कीर्त्तन हो सकता है, उसके द्वारा कई समय साधारण लोग भी समझ सकते हैं। सत्-शिक्षा-प्रदर्शनीमें यह प्रणाली ग्रहणकी गई है। यह भागवत-प्रदर्शनी या परमार्थ प्रदर्शनी है, दूसरे प्रकारकी नहीं है।

अभिन्न व्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्रीगौरसुन्दरके निजजन श्रीसनातन गोस्वामीजी हैं। "वे कर्नाटक प्रदेशके एक ब्राह्मण थे; वे बादशाह की नौकरी करते थे या वे साकर मल्लिक नाम से परिचित होकर हुसैनशाहके अधीनस्थ एक व्यक्ति थे"—ऐसा न समझकर उन्हें नित्य गुरुदेव जानकर उनका आश्रय ग्रहण करता हूँ। वास्तविक सनातन धर्म क्या है, यह उन्होंने प्रचार किया है। भुक्ति-मुक्ति आशासे कर्म-ज्ञानादि चेष्टाकी उत्पत्ति होती है।

श्रीमद्गीतामें कर्म-ज्ञानादिके खण्डनके लिए इन सभीकी अवतारणा या उल्लेखकर चरम श्लोक में सब कुछ छोड़कर शरणागतिमूला भगवद्भक्ति ही जो जीवोंका एकमात्र आश्रय है, यह बतलाया गया है।

कर्म-ज्ञानादिमें अपनी आरोहचेष्टा वर्त्तमान है, शरणागति नहीं है। कर्मचेष्टा अज्ञानी व्यक्तियोंकी मूढता मात्र है। ज्ञानकी पराकाष्ठामें भक्ति-धर्म ही कहा गया है। भक्ति होनेसे कुछ कम हुआ, ऐसा विचार न करना होगा।

श्रीमद्गीता शिशुपाठ्य ग्रन्थ है, परमार्थ विद्यालयकी प्राथमिक पुस्तक है। इसमें परमार्थ-विद्यालयके प्राथमिक प्रवेशार्थीके लिए elementary lessons (प्रारम्भिक शिक्षाएँ) हैं। पहले प्रारम्भिक अध्ययन, इसके पश्चात् अभ्यासिक अध्ययन, सबसे अन्तमें ऊँची शिक्षा या अध्ययन स्वरूप श्रीमद्भागवत हैं। भागवतमें Comparative studies (तुलनात्मक अध्ययन) है। तुलनात्मक अध्ययन समाप्त करने पर भागवत हुआ जा सकता है। जिस प्रकार भृगु ब्रह्मा, शिव एवं विष्णुमें से तुलनामें कौन श्रेष्ठ हैं, यह परीक्षा करनेके लिए गये थे। पश्चात् वे जान पाये कि विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जिन भगवानने अपने भक्तका पदाघात सहन किया था, उन्हें जानना आवश्यक है।

पहले श्रीमद्गीता पढ़ना होगा। नहीं तो तुलनात्मक अध्ययन समझा नहीं जा सकता। श्रीमद्गीता न पढ़नेसे कर्मवाद, ज्ञानवाद आदिके साथ शरणागतिमूला भक्ति का तारतम्य समझा नहीं जा सकता। जिस प्रकार चतुर व्यवसायी उसके दूकानमें सब चीजोंको सजाकर रखता है एवं खरीदनेवाले को पहले सबसे कम दामकी चीजें दिखाना आरम्भ करता है एवं उसके साथ साथ उन सभी चीजोंकी जो सभी प्रशंसाएँ हों, उन्हें कहता रहता है। जब जो चीज दिखलाता है, तब उस चीजकी बहुत प्रशंसा करता है। इससे व्यवसायी यह जान सकता है कि खरीददार कौनसी श्रेणीका है? सबसे अच्छी चीज चाहता है या मामूली चीजकी प्रशंसा सुनकर ही और बढ़ना नहीं चाहता? सबसे अन्तमें सबसे अधिक दामकी एवं उत्कृष्ट चीज दिखलाता है। उस चीजको वह अलग रखता है, क्योंकि सभी व्यक्ति इस चीजके ग्राहक न होंगे। श्रीमद्गीतामें भी ऐसा किया गया है। कर्म, ज्ञान, योग आदिकी एक एक कर प्रशंसा की गई है। किन्तु सबसे अन्तमें सबसे अधिक दामकी चीज दिखलाया है। भगवान्‌ने एकान्त आत्मीयको इस वस्तुकी बात कही है, सबसे गुह्यतम वस्तुका उपदेश दिया है, शरणागति का उपदेश दिया है। वह है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

नमस्कार ही शरणागति है। 'न' कारके द्वारा निषेध, 'म' कारके द्वारा समस्त अहंकार। अर्थात् समस्त प्रकारके प्राकृत अहंकारका परित्याग कर एकमात्र कृष्णके

पादपद्मोंमें आत्मसमर्पण ही भक्तिका आधार है। 'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया' आदि श्लोकोंमें मायाकी शरणागति छोड़कर एकमात्र श्रीकृष्णमें ही शरणागति की बात कही गई है। जीव सभी मायाके शरणागत हैं। वे समझते हैं कि मायामें शरणागति द्वारा उनका मंगल होगा, किन्तु ऐसा नहीं होता। एकमात्र श्रीकृष्णमें ही शरणागतिके प्रभावसे मायाको उत्तीर्ण हुआ जा सकता है।

श्रीमद्गीतामें कहा गया है कि अल्पबुद्धि वाले व्यक्ति ही दूसरे देवताकी पूजा करते हैं। यह बात 'कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता' 'अन्तवत् तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्' आदि श्लोकोंमें वर्णित है। किन्तु स्वतन्त्र परमेश्वर श्रीकृष्णकी पूजा न कर दूसरे देवताओंकी पूजा अवैध है।

श्रीमद्गीतामें १८ अध्याय हैं एवं श्रीमद्भागवतमें १८००० श्लोक हैं। श्रीमद्भागवत बादरायण (व्यास) सूत्रका अकृत्रिम भाष्य है। जिनका सूत्र है, उन्हींका भाष्य है। श्रीमद् आनन्दतीर्थ मध्वाचार्यने फिरसे उसकी (उस भाष्य) की टीका लिखी है। उसमें उन्होंने अपनी बात कुछ भी नहीं कही है। केवल व्यासजीके वाक्योंका उद्धार किया है। इसलिए वह unalloyed, true interpretation (अविमिश्र वास्तव व्याख्या) है। इसलिए वह स्व-कपोल कल्पना नहीं है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने बतलाया है कि असुर मोहनावतार श्रीशंकराचार्यका भाष्य स्वकपोल-कल्पनामय है। श्रीमन्मध्वाचार्यने 'भारत-निर्णय' एवं 'भागवत-निर्णय' लिखा है। महाभारतमें क्या कहा गया है, इस बात का निर्णय श्रीमद्भागवतमें किया गया है। इसलिए श्रीमद्भागवतने महाभारतका यथार्थ तात्पर्य प्रकाश किया है।

आनन्दतीर्थ मध्वाचार्यकी आम्नाय धारामें श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादने श्रीकृष्णप्रेमकी बात प्रचार की है। श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैत प्रभु एवं स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभुने इस धाराको स्वीकार किया है। यह आम्नाय-धारा या भागवत-परम्परा तृणादपि सुनीचता विचारमें प्रतिष्ठित है। तृणादपि सुनीच व्यक्ति किस प्रकार कीर्त्तन करेंगे? कीर्त्तन तो गुरुका कार्य है। वैष्णव गुरुका एकमात्र कृत्य कीर्त्तन है। वैष्णव गुरुका कार्य करने पर भी वे 'गुरु' अभिमान रहित हैं। वैष्णव गुरु प्रतिष्ठाके लिए कीर्त्तन नहीं करते। वे कीर्त्तन करते हैं, गुरुका कार्य करते हैं, उनके पीछे-पीछे सेवाकी आशासे प्रतिष्ठा को जाते देखकर मूर्ख व्यक्ति समझते हैं कि वैष्णव लोग प्रतिष्ठाके लिए लालायित हैं। वैष्णव कदापि अवैष्णव फल्गु-वैरागीकी तरह श्रीकृष्णकी प्रतिष्ठा एवं वैष्णवी-प्रतिष्ठाका भी परित्याग कर प्रच्छन्न प्रतिष्ठाके प्रार्थी नहीं होते। अनभिज्ञ नासमझ व्यक्ति लोग समझते हैं कि वैष्णव लोग भी उन्हींकी प्रतिष्ठाके लिए चेष्टा करते हैं। किन्तु वैष्णव गुरुका कार्य कर ही "तृणादपि सुनीच" हैं। कीर्त्तनकारी ही यथार्थ तृणादपि सुनीच हैं, और सभी ही दांभिक हैं।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(वैव-वर्णाश्रम)

१–वैष्णवको वर्णाश्रम-विधिके घेरेमें आबद्ध रखना क्या उचित है ?

"श्रीवैष्णवके साथ वैष्णवेतर व्यक्तिका पार्थक्य नहीं समझकर बीच-बीचमें बहुतसे व्यक्ति श्रीवैष्णवसे उनका वर्ण पूछते हैं एवं सामाजिक व्यक्तियोंकी तरह उन्हें चार आश्रमोंमेंसे एक आश्रममें अन्तर्गत करनेकी चेष्टा करते है। ऐसा करना नितान्त अवैष्णवोचित एवं सामाजिक चेष्टा-विशेष है।"

—'श्रीवैष्णवका वर्णाश्रम', स०तो० ११।१

२–अवैध वर्णाश्रम-विधान ही क्या भारतीय आर्यजातिके पतनका कारण नहीं है ?

"आहा ! सभी जातियोंके शासनकर्त्ता एवं गुरु जो भारतीय आर्यजाति है, उसकी शोचनीय अवस्था जो केवल जातिकी पुरातनताके कारण हुई है, ऐसी बात नहीं; किन्तु अवैध वर्णाश्रम-विधानके ही उपस्थित हुई है, ऐसा कहना होगा। जो समस्त जीवों के भी समस्त विधियोंके नियन्ता हैं एवं सभी प्रकारके अमङ्गलसे मङ्गल-संस्थापन करने में समर्थ हैं, वे उन एकमात्र परमेश्वरकी इच्छा होने पर ही कोई शक्त्याविष्ट पुरुष फिरसे यथार्थ वर्णधर्मका संस्थापन करेंगे।"

—चै० शि० २।३

३–किनके शासनमें समाजनिष्ठ विधिकी चरमोन्नति हुई थी ?

"ऋषियोंके हाथमें समाज-निष्ठ विधिकी चरम-उन्नति हुई थी, यह बात सभी सहृदय एवं वैज्ञानिक व्यक्तिमात्र ही स्वीकार करेंगे।"

—चै० शि० २।१

४–वर्णाश्रम-धर्मका विनाश करना क्या उचित है ?

"वर्णधर्म ही सामाजिक मानवका जीवनस्वरूप है। वर्णाश्रम दूर होने पर मानवों का वैज्ञानिक समाजका विनाश होगा एवं मानव 'पुनर्मूषिको भव' (अर्थात् फिरसे पूर्व-स्थिति प्राप्त करना)—इस पुरातन अभिशापको प्राप्त कर स्वेच्छाचारी म्लेच्छोंकी तरह अवैध जीवन प्राप्त करेगा। वर्णाश्रम-धर्मका विनाश करना किसी भी देशहितैषी व्यक्तिका आन्तरिक मत नहीं है। वर्णाश्रम धर्ममें जो मल प्रवेश कर गया है, उसे दूर करना ही आवश्यक है।"

—'मनुष्य सम्बन्ध और वैष्णव-धर्म',

प्रथम प्रबन्ध, स० तो० २।७

५–कौन-कौनसे गुणोंसे रहित व्यक्ति ब्राह्मण-पदवाच्य नहीं है ?

"शम, दम, तपः, शौच, सन्तोष, क्षमा,

सरलता, ज्ञान, दया, अच्युत (भगवान्) की भक्ति एवं सत्य—ये गुण जिनमें नहीं हैं, उन्हें 'ब्राह्मण' कहा नहीं जा सकता।"

—'ब्राह्मण और वैष्णव', स०तो ४।६

६–प्रेमारुरुक्षु (प्रेम पानेकी इच्छावाले) व्यक्ति किस प्रकारका आश्रम ग्रहण करेंगे ?

"गृहस्थाश्रम ही हो या वानप्रस्थाश्रम ही हो या संन्यास ही हो, जिस आश्रमको उस समय प्रेमारुरुक्षु प्रेमसाधनका अनुकूल समझेंगे, उस आश्रममें रहकर वे भजन करेंगे एवं जिन आश्रमको प्रतिकूल देखेंगे, उसे वे उसी समय त्याग करेंगे।"

चै० शि० ६।४

७—क्षेत्रसंन्यास या वानप्रस्थ किसे कहते हैं ?

"जो व्यक्ति अपने अपने पूर्व वासस्थान-गृहका परित्याग कर किसी विशेष-तीर्थ अर्थात् पुरुषोत्तम-क्षेत्र (श्रीधाम पुरी) या नवद्वीपधाम अथवा मथुरा-मण्डल आदिमें अकेले या सपरिवार परमार्थबुद्धिके साथ वास करते हैं, उनके आश्रमको "क्षेत्रसंन्यास" कहते हैं। यह आश्रम कलिकालका उपयुक्त वानप्रस्थ-धर्म है।"

अ० प्र० भ० म० १६।१३०

८–गृहस्थ होकर संन्यासीका वेष ग्रहण करना क्या उचित है ? ऐसी आश्रम-संकरता का क्या फल है ?

"गृहस्थ वैष्णवोंमें बहुतसे व्यक्ति मस्तक मुण्डन एवं कौपीन धारण कर अपने घरमें ही साधु हुआ करते हैं। इससे बढ़कर और क्या अनर्थ हो सकता है ? उनकी ऐसी आश्रम-संकरताका क्या प्रयोजन है ? यदि विरक्ति हो जाय, तो यथार्थ रूपमें वेष ग्रहण करें। यदि विरक्ति न हुई हो, तो ऐसे चिह्न-धारण द्वारा क्या लाभ होगा ? ऐसा करने पर वैष्णवधर्म को केवल लोगोंके निकट कलंकित करना ही हुआ। अवश्य ही परलोकमें इसका फल भोगना पड़ेगा।"

—'भेकधारण', स० तो० २।७

९–जातिभेद स्वीकार न करनेमें ही क्या परमार्थ होता है ?

"जब देखा जा रहा है कि जाति केवल सांसारिक तारतम्य है, तब जातिविचारमें जो दोष ब्राह्म-समाजके व्यक्ति दिखलाया करते हैं, वह केवल विदेशवासियोंका भ्रममात्र है।"

प्रे० प्र० ७म प्र०

१०–भारतवर्षमें किस समयसे वर्णाश्रम-धर्मका विपर्यय (विपरीत दशा) आरम्भ हुआ ?

"वर्णाश्रमरूप धर्म बहुत दिनों तक विशुद्ध रूपसे चले आने पर कालके प्रभावसे क्षत्रिय स्वभाव जमदग्नि एवं उनके पुत्र परशुरामको अवैध रूपसे ब्राह्मणोंमें परिगणना करनेके कारण स्वभावविरुद्ध धर्मानुसार उन लोगोंने स्वार्थके कारण ब्राह्मणों एवं क्षत्रियोंके बीच शान्तिका भङ्ग किया था। उसके द्वारा दोनों वर्णों में जो कलह बीजका वपन हुआ, उसके फलस्वरूप जन्मगत वर्ण-व्यवस्था-क्रम ही बद्धमूल होने लगा। कालक्रमसे मनु आदि रचित स्मृति-शास्त्रोंमें यह अस्वाभाविक विधि

गुप्त रूपसे प्रवेश करने पर उच्च-वर्ण प्राप्तिकी आशा रहित होकर क्षत्रिय लोगोंने बौद्ध-धर्मकी सृष्टि कर ब्राह्मणोंके सर्वनाशका उपाय उत्पन्न किया। जो क्रिया जब उपस्थित होती है, तब उसकी प्रतिक्रिया भी उसी प्रकार बलवती हो उठती है। इस कारणसे जन्मगत वर्ण-विधान और भी दृढ़ हो गया।"

चै० शि० २।३

११-भारतवर्षमें बौद्ध एवं जैन धर्मोंकी उत्पत्तिका क्या कारण है?

"ब्रह्म-स्वभाव रहित नाममात्रके ब्राह्मण लोग स्वार्थपर धर्मशास्त्रका रचना कर दूसरे-दूसरे वर्णोंके व्यक्तियोंकी वञ्चना करने लगे। क्षत्र-स्वभाव रहित सभी क्षत्रिय लोग युद्धमें असमर्थ होकर राजच्युत होने लगे एवं अन्तमें अकिंचित्कर बौद्ध धर्मका प्रचार करने लगे। वणिक् स्वभाव रहित वैश्य लोग जैनादि धर्मका प्रचार करने लगे एवं भारतका विपुल वाणिज्य-व्यापार घटने लगा। शूद्र-स्वभाव रहित शूद्र व्यक्ति लोग स्वभावविहित कार्यमें अधिकार न पाकर दस्युप्राय होकर रहने लगे। उससे वेदादि शास्त्र-चर्चा क्रमशः क्षीण होने लगी। म्लेच्छ देशके राजा लोगोंने भारत पर आक्रमण कर अधिकार कर बैठे।"

—चै० शि० २।३

१२-भारतमें वर्णाश्रम धर्मकी अवनतिका कारण क्या है?

"घटना क्रमसे तात्कालिक रूपसे केवल जन्मद्वारा वर्णका निर्णय होनेके कारण वर्णाश्रम-धर्म अपदस्थ हुआ है।"

—'मनुष्य सम्बन्ध और वैष्णव-धर्म'

स० तो० २।७

१३-परमार्थ क्या वर्णधर्मकी अपेक्षामें है?

"सांसारिक व्यवहारके निर्वाहके लिए वर्णधर्म या जाति धर्म चल रहा है; उसमें परमार्थ धर्मका सम्बन्ध नहीं है। परमार्थ धर्म चिर दिन व्यक्तिनिष्ठ है।"

—'वैष्णवमें जातिबुद्धि', स० तो० ९।९

१४-भारतीय आर्यजातिका अस्तित्व किस कारणसे अभी भी लुप्त नहीं हुआ?

"रोमजाति एवं ग्रीकजाति के लोग किसी समय आधुनिक यूरोप जातिकी अपेक्षा भी बलवान् एवं वीर्यवान् थे। आजकल उनकी क्या अवस्था है? वे लोग जातिलक्षण रहित होकर दूसरे-दूसरे आधुनिक जातिके धर्म एवं लक्षणोंको स्वीकार कर भिन्न रूपसे परिणत हो गये हैं। और क्या कहे, वे लोग अब अपने देशके वीरपुरुषोंके पौरुष एवं वीरताका अभिमान नहीं करते। हमारे देशमें आर्यजाति के व्यक्ति रोम जाति एवं ग्रीकजातिसे भी बहुत अधिक पुरातन होकर भी भारतके पूर्व वीरपुरुषोंका अभिमान रखते हैं। क्यों? केवल वर्णाश्रम धर्म-विधान प्रबल रहनेके कारण उनमें जाति लक्षण गया नहीं है। म्लेच्छ द्वारा हत राना वंशके लोग अभी भी श्रीरामचन्द्रके वंशजात वीर कहकर अपना अभिमान रखते हैं।"

—चै० शि० २।३

(क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

भक्तिकी बात

(गतांक, संख्या २, पृष्ठ ४३ से आगे)

देवहूति-पुत्र भगवान् कपिल इन निरीश्वर कपिलसे बिलकुल भिन्न हैं। इन्हें भगवान्‌के शक्त्यावेश अवतारके रूपमें ग्रहण किया गया है।

निरीश्वर कपिलके पदानुसरणकारी सांख्य-दार्शनिकोंका अव्यक्तानुमानका खण्डन कर आठ प्रकारकी प्रकृतिके नियन्ता स्वयं भगवान् ही हैं, यह बात गीतामें व्यक्त हुई है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
(गीता ७।८)

अर्थात् मेरी बहिरङ्गा प्रकृति भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार—इन आठ भागोंमें विभक्त है।

भगवान श्रीकृष्ण क्या वस्तु हैं, उनका स्वरूप क्या है ?— उनका ऐश्वर्य, बल-वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य कैसे हैं—यह न जानने पर भक्तितत्वकी सिद्धि नहीं होती।

इस प्रकार तत्व जानकर जिस कार्यकी प्रवृत्ति हो, वही भक्तिकी बात है। मनुष्य जाति अपने मन और बुद्धिका संचालन कर वायुके वेगसे शीघ्र गमन कर सैकड़ों हजारों वर्षों में निरीश्वर कपिलके मतमें जिसको आज नहीं पाई, उसे ही एक ही बातमें भगवान् श्रीकृष्णने यहाँ व्यक्त किया है। जो व्यक्ति समझ नहीं पाये, वे लोग भक्तिकी बातसे दूर चले गये। किन्तु जो व्यक्ति समझ पाये, वे भक्तितत्वमें और भी दृढ़ हुए। भगवान् श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम-तत्व हैं एवं जहाँ पुरुष हैं, वहीं उनकी सेवाके लिए प्रकृति प्रस्तुत है। पुरुषाभिमानी साधारण जीवके अधीनमें यदि सर्वत्र ही प्रकृतिकी आवश्यकता है, तो पुरुषोत्तम भगवान्‌की प्रकृति या सेविका नहीं है, ऐसी असंभव बात पागल व्यक्ति ही कहा करता है। पुरुषको प्रकृतिके अधीन कर जिस दर्शन-शास्त्रकी अवतारणा या प्रचलन है, उसे सर्वदा ही असम्पूर्ण जानना होगा। 'प्रकृति' कहकर रुक जानेपर काम नहीं चलेगा। किनकी प्रकृति है, यह जानना आवश्यक है। प्रकृति और शक्ति एक ही तत्व है। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति ही शक्तिके परिचयसे शक्तिमान्‌का अनुसन्धान किया करते हैं। उपनिषदादि श्रुति-शास्त्रोंमें परतत्व जो ब्रह्म हैं, उनकी बहुत प्रकारकी शक्तिका परिचय दिया गया है। ब्रह्मके सम्बन्धमें भगवद्गीतामें विशेष आलोचना की गई है। ये ब्रह्म भगवान श्रीकृष्णकी ही अंगज्योति हैं, यही बात हम श्रीब्रह्म-संहितासे जान पाते हैं—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम्।

तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥
(ब्रह्म-संहिता ५।४०)

अर्थात कोटि कोटि विश्व-ब्रह्माण्ड एवं उन सभी प्रत्येक ब्रह्माण्डके अन्तर्वर्ती कोटि पृथिवी और भिन्न भिन्न रूपसे अशेष वस्तु कोटि रूप ऐश्वर्य द्वारा पृथक् किए गए निष्कलंक, अनन्त, अशेषभूत ब्रह्म जिनकी अंगप्रभासे उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं आदिपुरुष गोविन्दको मैं प्रणाम या भजन करता हूँ।

सृष्टि किये गये जगतकी व्यतिरेक (भिन्न या निषेधात्मक) चिन्तामें अतद् (मायाके गुण) का निराकरण करनेके लिए ही ब्रह्मकी निर्विशेष अवस्थिति है। इसलिए ब्रह्म-तत्व को वेदादि शास्त्रोंमें निराकार, निर्विशेष, निरञ्जन, निःशक्तिक आदि कहे जाने पर भी उस ब्रह्मतत्वकी प्रतिष्ठा या आश्रय जो भगवान हैं, वे जड़ आकार रहित चित्-सविशेष, चिच्छक्ति-सम्पन्न, चिद्वस्तु एवं चिद्गुणोंके गुणमणि हैं। वे षड्ऐश्वर्यपूर्ण सच्चिदानन्द विग्रह हैं एवं वे ही चिल्लीला विशिष्ट परम पुरुष ही चरम प्रतिपाद्य विषय हैं। कर्मजड़ व्यक्ति उस चिद्विशेषको जड़-विशेष समझकर प्राकृत सहजिया हो पड़ रहे हैं। शुष्क ज्ञानी व्यक्ति लोग जड़-विशेषका कड़ुवापन आस्वादन कर चिद्-विशेषमें वह अप्रीतिकर कड़ुवापन है, ऐसा अनुमान कर उनकी आरोह-पन्थाकी हेयता, तुच्छता प्रकट करते हैं। ये दोनों प्रकारके विकृत व्यक्ति लोग ही कृपाके पात्र हैं एवं उनपर विशेष कृपा करनेके लिए स्वयं भगवान्ने अपना तत्व एवं अपना शक्तितत्व भगवद्गीतामें व्यक्त किया है।

ऊपर कहे गये आठ प्रकारकी प्रकृतिकी जननी जड़माया या भगवानकी बहिरंगा शक्ति है। उस बहिरंगा शक्तिमें बहुत प्रकारकी तुच्छताएँ हैं। अतएव उसे अपरा या अनुत्कृष्टा प्रकृति कहा गया है। यह अनुत्कृष्टा प्रकृति जिस शक्ति द्वारा क्रियावती होती है,वह उत्कृष्टा या परा शक्ति है। शक्तितत्व कदापि स्वयं भोगी नहीं हो सकता या एक शक्ति दूसरी शक्तिको कदापि भोग नहीं कर सकती। शक्ति-भोग्या है एवं शक्तिमान् तत्व भोगी या भोक्ता हैं।

पराशक्तिसे प्रकटित जीव स्वतन्त्र होनेके कारण अस्वतन्त्र पृथ्वी-जल-तेजादि की अपेक्षा उत्कृष्टा है। किन्तु इसलिए जीव कदापि सभी तत्त्वोंसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम-तत्व भगवानके साथ समान नहीं है। अस्वतन्त्रा जड़ा प्रकृतिसे चेतनकी श्रेष्ठताका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। जीव शक्ति ही इस जड़-जगत्को चलायमान करते हुए उसका धारण कर रही है। यदि वह जीवशक्ति जड़ाशक्तिके ऊपर कर्त्तृत्व करनेकी चेष्टा नहीं करती, तो जड़-जगतमें जड़विलास समूहका प्रत्यक्षीकरण नहीं किया जा सकता था। भूमि, जल, आग आदि पदार्थ जहाँके जहाँ ही रह जाते, यदि चेतनाशक्ति उसमें विलास करनेकी चेष्टामें यदि नहीं रहती। चेतनके संयोगसे ही मिट्टी, लकड़ी, पत्थर, लोहा आदि पदार्थोंके बदलेमें इस देखे जानेवाले जगत्का भौतिक ऐश्वर्य,

अट्टालिकाएँ, कारखाने-मशीन आदि समस्तकी संभावना हुई है। जड़ाशक्तिमें अभी ऐसा कोई सामर्थ्य या क्षमता नहीं है जो अपने आप ही कुछ कर सके। इसके द्वारा हम यह भी समझ सकते हैं कि यह जड़-विश्व ब्रह्माण्ड एवं गृह-नक्षत्रादि इस प्रकार किसी बृहत् चेतनके संयोगसे संभव हुए हैं। जड़में अपना कोई सामर्थ्य नहीं है—यही ध्रुव सत्य है।

जड़से उत्पन्न चौबीस तत्वोंको चेतनने ही चलायमान कर जो एक जड़-विलासकी विचित्रताका अविष्कार किया है, उसमें जड़की हेयता, तुच्छता एवं परिच्छिन्नता सर्वदा वर्त्तमान है। विचित्रता आनन्दमय होने पर भी जड़की विचित्रतामें निरवच्छिन्न आनन्दका अत्यधिक अभाव है। इसलिए उत्कृष्टा या परा प्रकृतिमें ही निरवच्छिन्न चिदानन्द वर्त्तमान है, यही बात प्रमाणित होती है। चिद्-विचित्रताके बिना चिदानन्दकी कोई संभावना नहीं है। जीव जो पराशक्ति है, इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
(गीता ७।५)

जीव पराशक्तिसे प्रकटित होनेके कारण जड़ा शक्तिके साथ उसका स्व-जातीय मेल नहीं है, जिस प्रकार जल-जन्तुके साथ स्थल-जन्तुका या स्थल जन्तुके साथ जल-जन्तुका मेल नहीं है। पराशक्तिके साथ जड़ा शक्तिका जो तात्कालिक अभिनिवेश है, वही मायिक या मिथ्या है। किन्तु जीव तत्व पराशक्तिसे प्रकटित होनेके कारण जड़ा शक्तिके ऊपर कर्त्तृत्व करनेका चेष्टा मात्र कर सकता है—यद्यपि यह मायिक एवं असम्भव है। क्योंकि एक शक्ति दूसरी शक्तिके ऊपर चिरकाल तक कर्त्तृत्व नहीं कर सकती। परा प्रकृतिमें अपना कार्य सम्पादन कर शक्तिमानकी सेवा करनेका सामर्थ्य मात्र है। शक्तिमानकी सेवा-चेष्टामें जीव-शक्तिकी जड़ा-शक्ति या प्रकृतिके ऊपर कर्त्तृत्व करनेकी जो चेष्टा हो, वही एकमात्र चिन्मय या याज्ञिक है, नहीं तो मायिक कर्म बन्धन मात्र है।

विष्णुपुराणमें तीन प्रकारकी शक्तिकी बात देख पाते हैं—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथापरा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥
(वि० पु० ६।७।६१)

विष्णुशक्ति परा, क्षेत्रज्ञा एवं अविद्या-संज्ञा विशिष्टा हैं। विष्णुकी पराशक्ति ही चिच्छक्ति है, क्षेत्रज्ञा शक्ति ही जीव शक्ति या तटस्था शक्ति है (जो मायारूपी अविद्यासे अपरा या भिन्ना कही गई है) एवं कर्मसंज्ञारूपा अविद्या शक्तिका नाम ही 'माया' है।

अतएव इस दृश्य जगतमें जो सभी कार्य हो रहे हैं, उनके मूलीभूत कारण भगवान्की उपरोक्त परा एवं अपरा शक्ति हैं। अपरा शक्ति 'क्षेत्र' कर्मसंज्ञा है; एवं पराशक्ति 'क्षेत्रज्ञा' है। इस जगतमें जितने प्रकारके विभिन्न जीवसमूहकी विशेषताएँ देखी जाती हैं, वे सभी ही इस क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञा शक्तियों

के संघर्षसे उत्पन्न हैं। इन दोनों शक्तियोंके अध्यक्ष एवं शक्तिमान् तत्व स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उनको जगतकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयका मूलीभूत कारण जानना होगा। यह बात श्रीमद्गीतामें स्वयं भगवान्ने कहा है—

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥
मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
(गीता ७।६-७)

अर्थात् सभी भूतोंको (स्थावर-जंगम रूप) पहले कहे गये दोनों प्रकृतियोंसे उत्पन्न जानना। इसलिए मैं ही सारे जगतकी उत्पत्ति एवं विनाशका एकमात्र कारण स्वरूप हूँ। हे धनंजय! मुझसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। सूतेमें जिस प्रकार मणियाँ गूँथी हुई होती हैं, उसी प्रकार मुझमें ही यह सारा विश्व गूँथा हुआ है अर्थात् ओतःप्रोत या अन्योन्य रूपसे संलग्न या संयुक्त है। वेदादि श्रुति शास्त्रोंमें हम 'एकमेवाद्वितीयम् 'ब्रह्म'· 'नेह नानास्ति किंचन', 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि जो प्रादेशिक वाक्य देखते हैं, उसका सामंजस्य यहाँ है। छः प्रकारके ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण भगवान् एक ही परात्पर तत्व हैं। इसलिए उनके समान या उनसे अधिक और कोई भी द्वितीय पुरुष नहीं है। यही बात भगवान श्रीकृष्णने स्वयं स्पष्ट कह दिया है। वे ही उनकी विधि शक्तियों द्वारा इस जगतमें ओतःप्रोत रूपसे वर्त्तमान हैं, यह भी स्पष्ट हुआ। शक्तिका परिणाम ही यह दृश्य जगत् है एवं शक्ति और शक्तिमान् अचिन्त्य-भेदाभेद तत्व होनेके कारण 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' शब्दसे भगवानकी परा एवं अपरा शक्तिको ही कहा गया है। शक्तिके परिणामसे पूर्णब्रह्ममें किसी प्रकारसे ह्रास-वृद्धि (कमी-अधिकता) संभव नहीं है। अतएव ब्रह्मको 'निरंजन' कहा गया है। एवं अपरा प्रकृति ब्रह्मकी छायामात्र होनेके कारण ब्रह्म को 'निराकार' कहा गया है।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने इसी अचिन्त्य भेदाभेद-तत्वका जगतमें प्रचार किया था। सभी सिद्धान्तोंका सार सिद्धान्त यही है कि श्रीकृष्ण ही परतत्व हैं एवं जीव तथा जगतमें उनके अधीन शक्तितत्व हैं। यह बात जो व्यक्ति समझ नहीं सकते, वे ही अपरा प्रकृति के अन्तर्गत अधीन जीव (materialist) हैं एवं यह तत्व समझकर जो व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्णके साथ सम्बन्ध स्थापन करनेकी चेष्टा करते हैं, वे ही मायामुक्त भगवद्भक्त (Spiritualist) हैं। भगवान श्रीकृष्णने श्रीगीतामें यही बात कही है—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७।१३-१४)

अर्थात् पहले कहे गये सत्वः, रजः एवं तमो गुण द्वारा यह सारा जगत् मोहित है एवं इन सभी गुणोंसे अतीत अव्यय स्वरूप मुझे

साधारण व्यक्ति जान नहीं पाते। यह अलौकिकी गुणमयी मेरी बहिरंगाशक्ति माया निश्चय ही कठिनतासे अतिक्रमण करने योग्य है, तथापि जो व्यक्ति एकमात्र मेरा आश्रय ग्रहण करते हैं, वे लोग ही इस कठिनतासे पार करने योग्य मायाका अतिक्रम कर सकते हैं।

इच्छा-द्वेष, भला-बुरा विचार आदिका मूल कारणरूप सत्व-रज-तमः—इन तीनों गुणों ने सारे जगतको मोहित कर रखा है। इसलिए गुणातीत चिद्विलास जो भगवान हैं, उन्हें 'परमव्ययम्' कहकर समझनेमें कठिनाई होती है। यहाँ परम अव्यय कहनेका तात्पर्य यही है कि ब्रह्म, परमात्मा या भगवानकी अनन्त शक्ति अनन्त प्रकारसे देखी जाने पर भी भगवान नित्यकाल ही पूर्ण एवं निर्विकार हैं। यह न समझना होगा कि जिस कारणसे ब्रह्म समस्त जगतमें सत्ता विस्तार कर वर्त्तमान हैं, इसलिए उनका कोई स्वरूप नहीं है। आगकी गर्मी सर्वत्र प्रवाहित होने पर भी अग्निमें कोई विकार नहीं है। सूर्य चिरदिन ही गर्मी प्रदान करते हैं, इसलिए सूर्यका ह्रास यदि न हो, तो सूर्य जिनकी कणामात्र शक्तिके परिचय हैं। ऐसे भगवान्का ह्रास क्यों हो? भगवान्की शक्ति आगकी गर्मीकी तरह सर्वत्र विकीर्ण होने पर भी उनकी शक्ति कदापि कम नहीं होगी। इसलिए वे परम अव्यय शक्तिमान् तत्व हैं। इसलिए श्रुतियोंमें कहा गया है—

'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।'

(क्रमशः)

—त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्
भक्तिवेदांत स्वामी महाराज

पौराणिक उपाख्यान

राजा यज्ञध्वज चरित्र

(गताङ्क पृष्ठ ४८ से आगे)

जो व्यक्ति कामना रहित होकर अकेले ही एकान्त भावसे श्रीजगन्नाथ भगवानकी पूजा करता है, वह सभी पापोंसे छुटकारा पाकर परम पाद प्राप्त करता है। जब मैंने बिना इच्छाके यह महापुण्य कर ऐसा सौभाग्य प्राप्त किया है, तब प्रशान्त परम भक्तिमान व्यक्ति भली प्रकारसे पूजा करे, तो क्या फल नहीं मिल सकता? अर्थात् सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

वे द्विजश्रेष्ठ वीतहोत्र हरिभक्त राजा यज्ञध्वजकी ऐसी बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न

हुए एवं वे भी हरिपूजा परायण हुए। इस प्रकार अविनाशी नारायण भगवान जाने या बिना जाने पूजा किये जाने पर भी मुक्ति प्रदान करते है।

यज्ञमाली-सुमाली चरित्र

पूर्वकालमें रैवत देश मेंदेवमाली नामक एक ब्राह्मण वास करते थे। वे वेद-वेदांगमें पारदर्शी, सभी भूतोंके प्रति दयावान् एवं हरिपूजा परायण थे। उन्होंने अपने कुटुम्बका पालन करनेके लिए अविक्रेय वस्तुकी बिक्री, चण्डालोंसे भी दान-ग्रहण, तप-विक्रय, व्रत-विक्रय, दूसरोंके लिए तीर्थगमन आदि अकरणीय कार्य करते थे। इस प्रकार उन्होंने प्रचुर अर्थ संग्रह किया। अन्तमें अपनी धनकी तीव्र लालसा देखकर अपने आपको वे धिक्कार देने लगे। उन्होंने अपने धनका चार भाग किया। दो भाग अपने लिए रखा और दो भाग पुत्रोंके उद्देश्यसे रख दिया। उन्होंने अपने पास वर्त्तमान अर्थको देवालय-निर्माण, उद्यान-तड़ागादि-निर्माण आदि कार्योंमें लगाया और गङ्गातीरमें जाकर अपने पापोंके प्रायश्चित्तके लिए सर्वदा अन्नादि दान करने लगे। इस प्रकार धनका पूर्ण व्यय हो जाने पर वे नर नारायण ऋषियोंके आश्रम बदरिकाश्रममें गये एवं महातपस्वी जानन्ति ऋषिके उपदेशसे परम पदको प्राप्त हुए।

देवमालीके दो पुत्र थे। उनमें ज्येष्ठ यज्ञमाली एवं कनिष्ठ सुमाली थे। यज्ञमालीमें पिता द्वारा संचित अर्थका दो भाग कर एक भाग छोटे भाई सुमालीको दिया। सुमालीने वह सभी अर्थ असत्संङ्गमें मदिरा-पान, गीत-वाद्य आदि वेश्यागमन एवं परस्त्री-सहवास आदि कुकार्यों में आसक्त होकर व्यय कर दिया। इसके पश्चात् पिता द्वारा सञ्चित सभी अर्थके व्यय हो जाने पर दूसरोंका द्रव्य अपहरण कर वेश्यागमन करने लगा। महान् बुद्धिमान यज्ञमाली अपने भाई सुमालीका ऐसा चरित्र देखकर बहुत ही दुःखित होकर उससे कहने लगे—"हे भाई! ऐसी अत्यन्त कष्टदायिनी दुःशीलताका अवलम्बन करनेकी क्या आवश्यकता है? हमारे वंशमें तुम ही एकमात्र दुरात्मा एवं पापाचारी पैदा हुए हो।"

यज्ञमाली द्वारा ऐसा निवारण किये जाने पर एवं उसके कर्मके लिए परिताप करते देखकर सुमालीने अपने बड़े भाईके सिरका केश पकड़ लिया एवं उन्हें मारनेके लिए खड्ग उठाया। उस समय नगरमें हाहाकार मच गया। इसके पश्चात् नगररक्षकोंने कुपित होकर सुमालीको बाँध लिया। अलौकिक चरित्रवाले यज्ञमाली भ्राताके प्रति स्नेहके कारण अत्यन्त दुःखित होकर नगरवासियोंके निकट प्रार्थना कर सुमालीको छुड़ा लिया। इसके पश्चात् फिरसे अपनी सम्पत्तिका दो भाग कर एक भाग सुमालीको दिया। किन्तु मूढ़ बुद्धिवाला सुमाली उस धनके मदसे मत्त होकर पहलेकी

तरह अपने पूर्वमित्र पाषण्डी एवं चण्डाल लोगोंके साथ उपभोग करने लगा। नीमका पेड़ जिस प्रकार फलपूर्ण होने पर भी कौओंके द्वारा ही सेवन किया जाता है, उसी प्रकार दुर्जनोंकी सम्पत्ति भी दुष्ट लोगों द्वारा ही सेवन की जाती है। साँप द्वारा शकर मिला हुआ दूध पीनेसे उसका विष ही बढ़ता है। उसी प्रकार धन पाकर सुमालीकी भी मत्तता बढ़ गई। वह सर्वदा मदिरा पानमें प्रमत्त होकर गोमांसादि खाने लगा एवं चाण्डाल स्त्रीमें आसक्त होनेके कारण चाण्डालताको प्राप्त हुआ। इस ओर यज्ञमाली सर्वदा साधु-संगके कारण निष्पाप एवं धर्मपरायण होकर निरंतर अन्नदान एवं पिता द्वारा बनाये गये तड़ाग (सरोवर), उद्यान, देवालय आदिकी रक्षा करने लगे। यज्ञमालीको भी इस प्रकार समस्त सम्पत्तिका व्यय हो गया। जिस प्रकार कल्पवृक्षका फल देवता लोग ही सेवन करते हैं, उसी प्रकार सज्जनोंका ऐश्वर्य भी साधु व्यक्तियोंको सुख प्रदान करता है। महान् धार्मिक यज्ञमाली धर्मके लिए सारा धन व्यय कर प्रतिदिन भगवान् विष्णुके मन्दिरमें भगवान्की सेवा करने लगे।

इस प्रकार बहुत काल बीत जाने पर यज्ञमाली एवं सुमालीकी वृद्धावस्था उपस्थित हुई एवं वे दोनों ही एक ही कालमें मृत्युको प्राप्त हुए। उस समय भगवान श्रीहरिने अपने भक्त यज्ञमालीके लिए सैकड़ों विमान भेज दिए। महामति यज्ञमालीने तेजोमय दिव्य रूप धारण कर विचित्र आभरण एवं तुलसी माला द्वारा भूषित होकर दिव्य विमानमें आरोहण किया। असंख्य कामधेनुएँ उनके विमानको ले जाने लगीं। देवता उनकी अर्चना, मुनि लोग स्तुति एवं अप्सराएँ उनकी परिचर्या करने लगीं। शीघ्र गतिसे यज्ञमालीने वैकुण्ठ जाते समय पथमें अपने भ्राताको देखा कि वह प्रेतदेह धारण कर भूख-प्याससे अत्यन्त कातर होकर, नंगा होकर, यमकिंकरोंकी मारसे व्यथित एवं पीड़ित होकर इधर-उधर दौड़ रहा है, एवं अपने कर्मोंके लिए पश्चाताप करते हुए विलाप एवं रोदन करते करते जा रहा है। यह देखकर दयायुक्त होकर हाथ जोड़ते हुए यज्ञमालीने भगवान्के दूतोंसे पूँछा—"कौनसे व्यक्तिको ये यमदूत लोग इस प्रकार पीड़ा दे रहे हैं?" उन पार्षदोंने उत्तर दिया—"यह व्यक्ति तुम्हारा ही भाई पापात्मा सुमाली है।"

यज्ञमालीने विष्णुदूतोंके कथन सुनकर अत्यन्त दुःखित होकर फिर उनसे पूछा—"यह व्यक्ति अपनी संचित पाप राशिसे किस प्रकार मुक्त हो सकता है? धर्म तत्वके ज्ञाता मनुष्यों का कहना है कि जिनके साथ सात पग चला जाय, वे बन्धु होते हैं। अतएव आप लोग मेरे अनायास ही बन्धु हैं। इसलिए इसकी मुक्तिका उपाय आप लोग कृपा कर बतलावें।"

यज्ञमालीका वाक्य श्रवण कर एक विष्णुदूत कृपापरवश होकर मन्द मन्द हँसते हुए कहने लगे, "हे नारायण परायण यज्ञमाले! इसकी मुक्तिका उपाय बतलाता हूँ, सुनो। तुमने पूर्व जन्ममें जो सुमहान् कार्य किया है, वह संक्षेपमें कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक

सुनो। तुम पहले जन्ममें विश्वंभर नामक वैश्य थे। उस समय तुमने अनगिनत महापातक किये थे। अपने स्वधर्म एवं पिता माता तक भी तुमने परित्याग कर दिया था। एक बार तुम्हारे बन्धुओं द्वारा तुम्हारा परित्याग किए जाने पर तुमने भूखसे अत्यन्त पीड़ित होकर शोकार्द्र होकर एक विष्णु-मन्दिरमें प्रवेश किया। वहाँ तुम वर्षाके कारण अपने पैरोंमें लगे हुए कीचड़को साफ़ करनेके लिए अपना पैर घिसने लगे। ऐसा करनेके कारण तुम्हें विष्णु मन्दिर उपलेपन का फल प्राप्त हुआ। तुम भी उस रात उपवासी थे एवं देवालयमें रहते समय एक साँपके डसनेके कारण प्रातःकालमें मृत्यु को प्राप्त हुए। तुम उस विष्णु मन्दिरके उपलेपन महापुण्यके कारण ही ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए एवं अचल-अटल हरिभक्ति प्राप्त करनेके अधिकारी हुए। इस समय शत कोटि कल्प काल भगवान् श्रीहरिके निकट वास करनेके पश्चात् विष्णु लोकमें ही परम ज्ञान प्राप्त कर परमपद प्राप्त करोगे। हे महामते! तुम जो महान् पातकी सुमालीको पापमुक्त करना चाहते हो, उसका उपाय यही है कि तुम गोचर्ममात्र (गायके शरीरका खालमात्र) परिमाणकी भूमिके उपलेपनका पुण्य फल दान कर अपने भ्राताका उद्धार करो, इसीसे उसका परम मंगल होगा।"

महामति यज्ञमालीने ऐसा सुनकर तुरन्त ही उनके वचनानुसार पुण्य फल दान किया। इससे सुमाली पापोंसे मुक्त हो गया एवं यमदूत उसे परित्याग कर भाग गये। इसके पश्चात् सभी भागोंसे युक्त विमानके आने पर सुमाली उसमें चढ़कर देवताओंकी तरह आनन्दका उपभोग करने लगा। उस समय वे दोनों भाई देवताओं द्वारा पूजित होकर परस्पर एक दूसरेको आलिंगन कर परम आनन्दको प्राप्त हुए। उसी समय उन दोनों भाईयोंकी सभी महर्षि लोग स्तुति करने लगे एवं गन्धर्व लोग उनका गुणगान करने लगे। उन दोनोंने इस प्रकार वैकुण्ठमें जाकर भगवान् श्रीहरिका सारूप्य प्राप्त किया। इसके पश्चात् यज्ञमाली वहाँ बहुत समय तक दिव्य भोगोंका उपभोग कर अन्तमें ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हुए।

महाभाग्यशाली सुमालीने दस हजार युग विष्णु लोकमें वास करने के पश्चात् फिरसे पृथिवीमें ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। सर्वदा हरिपूजा एवं हरिनामपरायण होकर मुक्ति पानेके लिए याग-यज्ञ-व्रतादि धर्मानुष्ठान किया। एक बार हरिनाम कीर्त्तन करते करते गंगा तीरमें गमन किया एवं वहाँ रहकर भगवान् विश्वेश्वर हरिकी आराधना कर योगियोंके लिए भी दुर्लभ परम अव्यय स्थान प्राप्त किया।

अतएव विष्णु मन्दिर के उपलेपन मात्र का यदि ऐसा माहात्म्य है, तो सब प्रकारसे भगवान् जनार्दनकी सेवा करना आवश्यक है। जो व्यक्ति भगवान् नारायणके शरणागत हो सकते हैं, उनको नरक देखना नहीं पड़ता एवं बिना किसी इच्छाके एकबार मात्र भगवान् श्रीहरिकी पूजा करने पर उन्हें

संसार बन्धनमें पुनः गिरना नहीं पड़ता। जो व्यक्ति हरिभक्तोंकी सेवा करते हैं, उनकी ब्रह्मा, शिव एवं स्वयं भगवान् विष्णु भी पूजा करते हैं। जो व्यक्ति हरिपूजापरायण हैं, उनके संगमात्रसे महापातकी व्यक्ति भी सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है। असंख्य एवं अशेष पापाचारी व्यक्ति भी हरिपूजा एवं हरिनाम-संकीर्त्तनमें आसक्त भक्तोंकी सेवा-शुश्रूषा द्वारा परम गति प्राप्त करते हैं।

—(बृहन्नारदीय पुराणसे)

श्रीजन्माष्टमी पर दार्शनिक आलोचना

[अस्मदीय श्रीश्रीलगुरुपादपद्म परमाराध्यतम नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा श्रीकृष्णजन्माष्टमीके अवसर पर प्रदत्त भाषण]

श्रील रूप गोस्वामीपादने बतलाया है कि अनुकूल अनुशीलन ही जीवमात्रके लिए श्रीकृष्ण सेवा-प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है। प्रतिकूल विषयसे दूर रहना ही श्रील रूप गोस्वामीजीकी भक्तिका उद्देश्य है। परपक्ष का खण्डन-कार्य या कृष्णभजन-विरोधी आचार या शिक्षासे दूर रहना ही आवश्यक है। तब परपक्ष या भजनबाधक इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त ज्ञानको स्तब्ध करने जाकर उसीमें बह जाना—इसके उदाहरण भी बहुत देखनेमें आते हैं। अतएव श्रील रूप गोस्वामीपादने "आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा" एवं "प्रातिकूल्यस्य विवर्जनम्" आदिका उपदेश दिया है। आज इस माधव-तिथिमें इस तिथि के एकान्त सेवकोंके निकट मेरा यही सनिर्बन्ध अनुरोध है कि वे मेरे प्रति सर्वदा ही कृपादृष्टि रखें एवं मैं इन्द्रियोंसे उत्पन्न ज्ञानरूप परपक्ष का खण्डन करने जाकर उसीमें डूब न जाऊँ।

असुरकुल-चूड़ामणि दानवराज कंस द्वारा कृष्ण-विनाशके लिए सब प्रकारसे युक्तिजाल या कारागार सृष्टि किये जाने पर भी या केवल ज्ञानकी भूमिमें रहकर कृष्ण-कृष्णभक्तोंकी सेवाको ध्वंस करनेका प्रयास करने पर भी ऐसा प्रयास सर्वथा संपूर्ण रूपसे व्यर्थ होता है, यही इतिहास द्वारा प्रमाणित होता है, एवं यही शास्त्रयुक्ति-संगत है। अद्वैतवादी ज्ञानी लोग कृष्ण-विनाश या कृष्ण-सेवा-विनाशके लिए जितने भी प्रकारके विचार-कारागार क्यों न बनायें, उसमें कृष्णभक्त वसुदेव या स्वयं कृष्ण वासुदेव आबद्ध नहीं होते। कृष्ण को उनके शत्रुसे रक्षा करना कृष्ण वसुदेवका एकमात्र कर्त्तव्य है। भागवतके इतिहाससे

जाना जाता है कि वसुदेवकी कृष्णरक्षा रूप सेवा कार्यमें दूसरों दूसरों सेवकोंके अलावा सहस्रफणाधारी अनन्तदेवने भी सहायता की थी। अतएव मैं श्रीजन्माष्टमी-दिवसमें श्रील अनन्त-वासुदेवकी दासता पानेकी इच्छासे इस महापुण्यमयी-तिथिमें कृष्णको नन्दालयमें निर्विघ्न रूपसे अर्थात् केवलाद्वैतवादकी झूँठी प्रवञ्चना एवं हिंसा-द्वेषसे रक्षा कर निरापद एवं सुरक्षित रूपसे पहुँचाये जानेवाली लीलाका स्मरण करूँगा। यही मेरा जन्माष्टमी-सेवा है।

जो व्यक्ति कृष्णत्व एवं उनके नित्य सेव्यत्वको स्वीकार नहीं करते, वे लोग ही प्रत्यक्षरूपसे या परोक्षरूपसे कृष्णविनाश चेष्टा करनेवाले कंस या उसके दास हैं। मैं विद्वानोंके समाजमें विनीत भावसे विचार-प्रार्थना कर निवेदन कर रहा हूँ कि वे लोग थोड़ी-सी निरपेक्षताका अवलम्बन कर मेरे वाक्योंकी युक्तिपूर्णता उपलब्धि करें। भारतीय हिन्दूमात्र ही शास्त्र, गुरु एवं ईश्वर पर विश्वास करते हैं। इन तीन तत्वोंपर विश्वासको ही आस्तिकता या दैव भाव कहते हैं। उसमें आस्था स्थापन न करना या उसमें सन्देह उठाना या उनके सम्मानकी हानि करना ही नास्तिकता या आसुरिक भाव है। इसलिए देवासुरका पार्थक्य हमारे लिए सहज ही अनुमान करने योग्य है एवं शास्त्रके इतिहाससे निश्चित है। विचार द्वारा यदि ऐसा प्रमाणित हो कि केवलाद्वैतवादियोंने शास्त्र, गुरु एवं भगवान्—ये तीन तत्व या तीन तत्वोंके अनुगत तत्वोंको मिथ्या या भ्रमात्मक कहकर प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है, ऐसा होने पर उन्हें देव एवं असुर—इनमेंसे किस श्रेणीमें रखना होगा, इस बातका विद्वान व्यक्ति निर्णय करेंगे।

'शास्त्र' कहनेसे शासन वाक्य जिसमें है, वही शास्त्र है। शासन वाक्य या उपदेश समूह वेदोंमें भली प्रकारसे एवं विस्तारसे प्रकाशित है। अतएव वेद ही एकमात्र शास्त्र हैं या वेदानुगत-विचारसे युक्त जो कुछ भी हो, वही शास्त्र है। इस विषयमें आस्तिक हिन्दू-सम्प्रदायोंमें परस्पर कोई विशेष मतभेद देखा नहीं जाता। वेदके सार या शिरोभागका नाम ही 'वेदान्त' है। भारतमें बहुतसे दर्शनों का प्रचलन रहने पर भी आस्तिक समाजमें वेदान्त-दर्शन ही सर्वश्रेष्ठ दर्शन है। इसलिए वेदान्त-दर्शनके प्रति सभी धार्मिक आचार्य लोगोंने ही श्रद्धा एवं भक्ति प्रदर्शन किया है। केवल अद्वैतवादके गुरु आचार्य श्रीशंकर अपने शारीरिक भाष्यकी रचना करने जाकर शारीरक-सूत्रके प्रति यथोचित सम्मान नहीं दिखलाया। परन्तु उन्होंने सूत्रोंमें भ्रम दिखलाकर व्यासदेवजीको भ्रान्त कहते हुए प्रकारान्तरसे वेद एवं वेदान्तको भी भ्रान्त कहकर प्रतिपादन करनेकी चेष्टा की है।

केवलाद्वैतवादका विचार विश्लेषण करनेपर स्पष्ट ही जाना जायगा कि वे लोग वेदान्तके मूल उद्देश्यकी हानि करनेमें कोई कसर नहीं बाकी रखे। वेदान्तमें भगवानके नित्य स्वरूप एवं नित्य शरीरको स्वीकार किया गया है। इसलिए उसका दूसरा नाम शारीरक है। मायावादाश्रयी या केवलाद्वैतवादी लोगों

ने इस नामकी सार्थकता विनाश करनेके लिए बहुत प्रयास किया है। केवल यही नहीं, 'वेद क्यों मानूं'—इस प्रकार वेदके प्रति सन्देह करते देखा जाता है। जहाँपर इस प्रकार वेद-सम्बन्धमें सन्देह उठाए जा रहे हैं, वहाँ वेदसम्मान की हानि होने के कारण हम उस स्थानमें आस्तिकता का गन्धलेश भी है, यह स्वीकार करनेके लिए कदापि प्रस्तुत नहीं हैं। अद्वैतवादियोंमें से कोई कोई कहते हैं कि "वेदरूपी निश्रेयसमें कदापि तारतम्य नहीं रह सकता। वह निर्विशेष होनेके लिए बाध्य हैं, वह अद्वैत तत्व ही होता है। द्वैत तत्व तारतम्य रहित नहीं हो सकता। इसलिए वह किस प्रकार निःश्रेयस हुआ?" वेदका इस प्रकारसे तात्पर्य ग्रहण करने पर वह 'सोनेकी पत्थर वाटी" की तरह वेद उपदेशक होनेके कारण एक ओर सविशेष एवं दूसरी निर्विशेष होनेके कारण शून्य-ज्ञापक है। वेदको इस प्रकार शून्यजातीय अभावपोषक सत्ताहीन समझने पर उसका मान या मर्यादा क्या रह सकती है? वेद शासन करते हैं। जिनमें शासन वाक्य हों, वे ही शास्त्र हैं, वे ही सविशेष तत्व हैं, वे ही गुरु या उपदेशक हैं। शास्त्र ही गुरुरूपसे मंगल विधान करते हैं। शास्त्र का या शासकका निर्विशेषत्व मानने पर शास्त्रकी हानि होती है एवं शासन योग्य वस्तुकी अभाव होने पर उसकी आवश्यकता भी नहीं रह जाती। केवलाद्वैतवादी आत्मघाती हो सकते हैं, शास्त्र कदापि आत्मघाती नहीं हो सकते। निर्विशेषत्व यदि वेदका मत हो, तो वेद स्वयं निर्विशेष होकर अपनी अस्तित्व शून्यताका परिचय देंगे। मैं यदि खुली सभा में खड़े होकर कहूँ कि 'मैं नहीं हूँ" तो यह मेरी उन्मत्तता का ही परिचय प्रदान करता है। उनके नित्य वर्त्तमान रहने के कारण वेद कदापि उसे अस्वीकार नहीं कर सकते। यदि तर्क स्थलमें ऐसी बात प्रकाश पाये, तो जानना होगा कि वह मायावादीका कल्पित वेद मात्र है, वह भगवद्-वाणी अपौरुषेय वेद नहीं हैं। उसमें उनके स्व-कपोल कल्पित वाक्य-समूह के मिथ्या उद्गार मात्र संग्रहीत है, ऐसा समझना होगा।

आचार्य श्रीशंकरजीने 'अज्ञान-बोधिनी' ग्रन्थमें गुरुका स्वरूप कहने जाकर जो कुछ प्रकाश किया है, उसके द्वारा किसी भी व्यक्तिमें शिष्य होनेका अभिलाष नहीं रहता, या ऐसा गुरुकरण स्वीकार करनेपर भी ऐसी गुरुके प्रति श्रद्धा एवं विश्वास रहना सम्पूर्ण असंभव है। आचार्य शंकरजीने उस ग्रन्थमें जो कुछ कहा है, उसमेंसे कुछ अंश बुद्धिमान् पाठकोंके ज्ञानके लिए उद्धार करता हूँ। यह पाठ करने पर ही निरपेक्ष पाठक आप लोग केवलाद्वैतवादमें भूल-भ्रान्ति कहाँ है, यह समझ सकेंगे। वह इस प्रकार है—

"तस्मादेवाचार्याद् ब्रह्मात्मज्ञानावाप्तिः कथमाचार्योऽज्ञो वा स्यात्। यद्यज्ञो न ब्रह्मात्मैकत्व ज्ञानमुपदेष्टुं शक्नुयात् अथ विज्ञः तदा ब्रह्मात्मज्ञानेन ब्रह्मैव भवति। ततः अज्ञानं तत्कार्यदेहद्वयनिवृत्तेः। तदा देहादिसंबद्धाभावात् तु न शिष्यादिशासनं ह्युपपद्यते। अथानवगतो ब्रह्मात्मभावः स्यात्

तस्माद्देहादसंबद्धोऽगीकर्त्तव्योऽभ्युपेतव्यः । तदा ज्ञानादज्ञानतत्तत्-कार्य-निवृत्तिः तस्मादाचार्याधीनं ज्ञानमपेक्षते इत्यत्र नायं दोषः ॥" अर्थात् यह प्रश्न होता है कि आचार्य अज्ञ या विज्ञ होंगे ? यदि वे अज्ञ हों, तो ब्रह्मात्मकत्व ज्ञानोपदेश करनेमें (अज्ञताके कारण) असमर्थ हैं। यदि वे विज्ञ हों, तो ब्रह्मात्मज्ञानके द्वारा वे ब्रह्म हो गये हैं। अतएव उनका अज्ञान एवं उसके कार्य स्थूल-लिंग शरीर दोनों निवृत्त हो गये हैं एवं वे (ब्रह्मज्ञानके कारण) देहादि सम्बन्ध रहित होनेके कारण शिष्य पर शासन या उसे उपदेश आदि करनेमें असमर्थ हैं। इसलिए 'अनवगतः' अर्थात् अनवगत (मूर्ख या ब्रह्मज्ञानशून्य) व्यक्ति ही शिष्यको ब्रह्मात्मभावका उपदेश करेंगे । आचार्यका ही (अज्ञानके कारण) शरीरादि सम्बन्ध स्वीकार करना होगा। ऐसे आचार्यके निकट उपदेश प्राप्त कर अज्ञान एवं अज्ञानकार्यकी निवृत्ति करनी होगी। इसीसे जाना जाता है कि ज्ञानरूप मोक्ष-प्राप्ति आचार्याधीन एवं आचार्य-शिक्षा सापेक्ष है। ज्ञान इस प्रकार गुरुसापेक्ष एवं उनके अधीन होनेके कारण दोष नहीं है । ऐसा ही शंकरजीका कथन है।

इस उद्धार किये गये वचनोंसे 'अथानवगतो ब्रह्मात्मभावं स्यात्' कथनद्वारा श्रीशंकरजीने जिस प्रकार गुरुके स्वरूपको अनवगत, मूर्खतायुक्त एवं अज्ञान-शासित कहकर वर्णन किया है, उसके द्वारा कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति अपनी मंगल-कामनासे ऐसे गुरु का आश्रय नहीं ग्रहण करेंगे । जिस सम्प्रदाय में गुरुके प्रति इस प्रकार भक्ति श्रद्धा है कि उन्हें 'बद्ध' मानना ही होगा, ऐसे सम्प्रदाय को क्या भारतीय हिन्दु लोग आस्तिक कह सकते हैं ? वेदसार-भाष्य श्रीमद्भागवतमें 'अन्धा यथान्धैरुपनीयमानाः' आदि श्लोकोंद्वारा हमें ऐसे गुरुबुव (गुरु नामधारी) व्यक्तिके आश्रय ग्रहण करनेके लिए मना किया गया है। केवलाद्वैतावादी लोगोंने मोक्षकी कामना से अनवगत अज्ञ गुरुके चरणोंका आश्रय करने जाकर स्वयं भी अज्ञताका परिचय देकर अन्ध कूपमें गिरकर भूलमें ही मूल कर सब प्रकारसे दोष किया है।

भ्रान्तगुरुकी शिक्षा भी भ्रमपूर्ण है । इसलिए ऐसे गुरुमुखसे निकले 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' या 'सोऽहम्' आदि वाक्योंकी भ्रमपूर्ण धारणाएँ ही सरलहृदय मंगलाकांक्षी शिष्यके हृदयमें प्रकाशित होंगी । श्रीशंकरदेवने 'एकमेवाद्वितीयम्' वाक्यका कदर्थ करने जाकर बाध्य होकर गुरुतत्त्वमें इस प्रकारकी भ्रान्तिका प्रवेश कराया है। इसलिए आस्तिक सम्प्रदाय उनकी बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा कर नहीं पा रहे हैं।

(क्रमशः)

-०-